"अष्टाङ्ग योग"

चन्द्र किशोर
असि0 प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,
ब्रह्मावर्त पी0 जी0 कॉलेज,
मन्धना, कानपुर (उ0 प्र0)

सारांश

योग शब्द वेदों, उपनिषदों गीता एवं पुराणों आदि में अतिपुरातन काल से व्यवहृत होता आया है। भारतीय दर्शन में एक अतिमहत्वपूर्ण शब्द है। आत्मदर्शन व समाधि से लेकर कर्मक्षेत्र तक योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है। योगदर्शन के उपदेष्टा महर्षि पतंजलि का दर्शन ज्ञानोपलब्धि का विधिवत मार्ग बताता है, जो शरीर, इन्द्रियों तथा मन को पूर्ण अनुशासित करके चित्त की वृत्तियों का निरोध करता है। चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही 'योग' कहते हैं क्योंकि इनके पूर्ण निरोध से आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है। इस निरोध के लिए वे–'अष्टाङ्ग योग' यानि – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, इन आठों अंगों का मार्ग बताते हैं, जो निरापद है।

योग का अर्थ है – 'संयुक्त होना'। जिस विधि से साधक अपने प्रकृतिजन्य विकारों को त्यागकर अपनी आत्मा के साथ संयुक्त होता है, वही 'योग' है। यह आत्मा ही उसका निज स्वरूप है तथा यही उसका स्वभाव है। अन्य सभी स्वरूप प्रकृतिजन्य है, जो अज्ञानवश अपने ज्ञात होते हैं। इन मुखौटों को उतारकर अपने वास्तविक स्वरूप को उपलब्ध हो जाना ही 'योग' है। यही उसकी 'कैवल्यावस्था' तथा 'मोक्ष' है।

मुख्य शब्द

चित्तवृत्तिनिरोध, ज्ञानोपलब्धि, कैवल्यावस्था, मोक्ष

प्रस्तावना

प्राचीनकाल में मंदिर–मंदिर में जय–जय की ध्वनियाँ सुनाई देती थीं। तीर्थों में घण्टानिनाद शब्दायमान होता था। मठों में वेदपाठ का घोष होता था। स्त्रियों की पूजा होती थी। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति बन्धुत्व की भावना थी किन्तु वर्तमान समाज पूरी तरह से बदल गया है। मनुष्य 'यावज्जीवेत्–सुखंजीवेत' के सिद्धान्त पर चलकर 'येन–केन–प्रकारेण' भौतिक खुशियां ही अर्जित करना चाहता है और इसी कारण कहीं सम्पत्तियाँ लूटी जा रही हैं, कहीं स्त्रियों और बच्चों का अपहरण हो रहा है। कहीं रूधिर की धारा बह रही है, तो कहीं करूण–क्रन्दन सुनाई दे रहा है। चारों तरफ दुराचार, व्यभिचार, बालात्कार, लूट, अपहरण, डकैती, भ्रष्टाचार तथा आतंकवाद के स्वर सुना जा रहा है और यही देखा जा रहा है।

ऐसी स्थिति में आवश्यकता है मनुष्य का वैचारिक दृष्टिकोण बदलने की और इसके लिए योगाभ्यास और प्राणायाम जरूरी है क्योंकि योग ही मनुष्य की चित्तवृत्तियों का निरोध करके अनुशासित करता है तथा वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति कराता है।

अध्ययन का उद्देश्य

तनाव मुक्त जीवन तथा जीवात्मा का विराट चेतन से संयोग।

साहित्यावलोकन

1. श्रीमद्भगवद्गीता, तत्वविवेचनी हिन्दी टीका सहित, टीकाकार–जय दयाल गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर, सं0–2075
2. महर्षि पातंजलि कृत 'पातंजलयोगसूत्र'–योग दर्शन, अनुवादक एवं व्याख्याकार – श्री नन्दलाल दशोरा, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार – 2018
3. सदानन्द योगीन्द्र कृत–वेदान्तसार, अनुवादक एवं व्याख्याकार–स्वामी विदेहात्मानन्द, प्रकाशक – स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्णमठ, नागपुर, द्वितीय संस्करण – 23.05.2009 एवं द्वितीय पुनर्मुद्रण – 19.10.2017
4. 'योग साधना' व योगचिकित्सारहस्य–स्वामी रामदेव, दिव्य प्रकाशन, दिव्ययोग मंदिर ट्रस्ट, कृपालुबाग आश्रम, कनखल हरिद्वार–2005

'योग का स्वरूप'

"योगश्चित्तवृहित्तनिरोधः।" ————————————(1)

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है अर्थात् चित्त की वृत्तियों का सर्वथा रूक जाना ही 'योग' है। योग संकल्प की साधना है। यह अपनी इन्द्रियों को वश में कर चेतन आत्मा से संयुक्त होने का विज्ञान है। यह हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई में भेद नहीं करता। यह न शास्त्र है, न धर्मग्रंथ अपितु यह एक अनुशासन है, जो मनुष्य के शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि को पूर्ण अुशासित करे वाला विज्ञान है।

चित्त वासनाओं का पुंज है। अनेक जन्मों के कर्म–संस्कार इसमें विद्यमान हैं, जिससे हमेशा इसमें वासना की तरंगे उठती रहती हैं। चित्त की वृत्तियाँ बहिर्मुखी हैं, जो सदैव संसार की ओर भागती हैं। इसलिए मन सदैव चंचल बना रहता है। इन वृत्तियों की तरंगों को सर्वथा रोक देने से ही 'योग' हो जात है। बुद्धि और मन चित्त की ही अवस्थाएं हैं। चित्तवृत्ति निरोध को 'अमनी–अवस्था' भी कहते हैं। इसके स्थिर होने पर सभी वासनाएं छूट जाती हैं। यही आत्म–ज्ञान की स्थिति है।

चित्त

"अनुसन्धानात्मिका अन्तःकरण वृत्तिः चित्तम्।" ————————(2)

अर्थात् अन्तःकरण की खोज या स्मरण कराने वाली वृत्ति को 'चित्त' कहते हैं। अतः मन का अगला आयाम यानि भीतरी हिस्सा जो जोड़ता है चेतना से, 'चित्त' कहलाता है। चित्त का मतलब हुआ विशुद्ध प्रज्ञा व चेतना, जो स्मृतियों से पूरी तरह बेदाग हो। यहाँ कोई स्मृति नहीं होगी।

हम लोग जिसे चेतना कह रहें हैं, वो वह आयाम है, जो न भौतिक है, न विद्युतीय और न ही विद्युत–चुम्बकीय। यह भौतिक आयाम से अभौतिक आयाम की ओर एक बहुत बड़ा परिवर्तन है। यह अभौतिक ही है जिसकी गोद में भौतिक घटित हो रहा है। भौतिक तो एक छोटी सी घटना है। इस पूरे ब्रह्माण्ड का मुश्किल से 1: या 2: हिस्सा ही भौतिक है, बाकी सब अभौतिक ही है।

यौगिक शब्दावली में इस अभौतिक को हम एक खास तरह की ध्वनि से जोड़ते हैं। हलाकि वर्तमान परिवेश में यह समझ बहुत बुरी तरह से विकृत हो चुकी है। इस ध्वनि को हम 'शि–व'कहते हैं। 'शिव' का मतलब है, 'जो है नहीं'। जब हम शिव कहते हैं तो हमारा आशय पर्वत पर बैठे किसी इंसान से नहीं होता। हम एक ऐसे आयाम की बात कर रहें हैं, जो है नहीं, लेकिन इसी 'नहीं होने' के अभौतिक आयाम की गोद में ही हरेक घटना घटित हो रही है। अगर आप अपने चित्त को छू लेंगे, अगर आप अपनी इन्टेलीजेन्स के उस आयाम तक पहुंच जायेंगे, तो ईश्वर भी आपका दास हो जायेगा।

वृत्ति

वृत्ति का अर्थ है– मनः स्थिति। इसे क्रियार्थ भी कहते हैं। वक्ता जो कुछ भी कहता है, वह मनःस्थिति अर्थात् मन में उत्पन्न भाव–विचार के अनुसार कहता है। अतः वृत्ति का लक्षण हुआ – क्रिया के जिस रूप से वक्ता की वृत्ति अथवा मनःस्थिति का बोध होता है, उसे वृत्ति या क्रियार्थ कहते हैं।

चित्तवृत्तियों के भेद

चित्त, प्रकृति और पुरूष का संयुक्त रूप है, जो पुरूष अर्थात् आत्मा के कारण ही सक्रिय होता है। चित्त की पाँच प्रकार की वृत्तियाँ हैं, जो सांसारिक ज्ञान का आधार हैं, जिनका निरोध होने पर वह अपने प्रकृति–जन्य स्वरूप को त्यागकर आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है –

"प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।"————————(3)

अर्थात् प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच 'वृत्तियाँ' हैं।

1. **प्रमाण :–** अज्ञात् वस्तु का निश्चय कराने वाली वृत्ति अर्थात् जिसके द्वारा किसी वस्तु के सत्य स्वरूप को जानने की चेष्टा की जाती है, उसे प्रमाण वृत्ति कहते हैं।
2. **विपर्यय :–** किसी वस्तु में अन्य वस्तु का मिथ्याज्ञान हो जाना विपर्यय है। जैसे– रस्सी में सांप की भ्रान्ति हो जाना।
3. **विकल्प :–** वास्तविकता से दूर तथा काल्पनिक प्रतीति को विकल्प कहते हैं। जैसे– खरहे की सींग आदि।
4. **निद्रा :–** जागृतावस्था का अभाव अर्थात् जिसमें कुछ दिखाई नहीं देता किन्तु उस अभाव की प्रतीति रहती है। जैसे– आलस्य, प्रमाद आदि।
5. **स्मृति :–** पूर्व की घटनाओं का पुनः उसी रूप में स्मरण हो आना स्मृति है।

योग के आठ अङ्ग

योग के आठ अंग बताये गये हैं, जिन्हें क्रमशः साधने से चित्तशुद्ध हो जाता है तथा प्रत्येक के साथ ज्ञानोपलब्धि होती जाती है।

"अस्य अङ्गानि–यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधयः।।" ——(4)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा सविकल्पक समाधि – ये इस निर्विकल्पक समाधि के अंग हैं।

"यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि।।"————————(5)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के ये आठ अंग बताये गये हैं, जिनके क्रमिक अनुष्ठान से ही अविद्या जनित चित्त के सभी दोष अर्थात् मल दूर होकर चित्त निर्मल होता है।

यम

योग के आठ अंगों में पहला अंग है – यम, जो बाह्य आचरण सम्बन्धी सुधार करता है। व्यक्ति का आचरण शुद्ध होने पर उनका मन शुद्ध होता है तथा अच्छे संस्कार बनते हैं। वेदान्तसार तथा पातंजल योग सूत्र में 'यम' का लक्षण इस प्रकार से किया गया है –

तत्र – "अहिंसा–सत्य–अस्तेय–ब्रह्मचर्य–अपरिग्रहा यमाः।।"————————(6)

"अहिंसासत्यस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः।।"————————(7)

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये 'यम' कहलाते हैं। ये यम इस प्रकार है :–

1. **अहिंसा :–** मनसा, वाचा, कर्मणा से किसी भी प्राणी को किञ्चिदमात्र भी दुःख न पहुंचाना – 'अहिंसा' है।
2. **सत्य :–** इन्द्रिय तथा मन के द्वारा जैसा देखा, सुना या अनुभव किया गया है, उसे वैसा ही कहना – 'सत्य' है। किन्तु ऐसा सत्य प्रिय तथा हितकर भी होना चाहिए। अप्रिय तथा अहितकर सत्य हो

तो नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि इससे दूसरों को दुःख होता है, जो हिंसा है। कपट और छल रहित व्यवहार ही सत्य व्यवहार है।

3. **अस्तेय :–** चोरी न करना अस्तेय है। छल, कपट, धोखा, झूठ, बेईमानी आदि किसी भी प्रकार से दूसरे के स्वत्व का अपहरण करना 'चोरी' है।

4. **ब्रह्मचर्य :–** मनसा, वाचा, कर्मणा मैथुन का परित्याग कर वीर्य की रक्षा करना ही 'ब्रह्मचर्य' है। योग साधना में इसका विशेष महत्व है। यही ऊर्जा योगोपलब्धि में सहायक सिद्ध होती है।

5. **अपरिग्रह :–** आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह न करना ही 'अपरिग्रह' है। इन आचरणों के पालन से ही बाह्य शुद्धि होती है, जिससे साधना में सहायता मिलती है।

नियम

योग के आठ अंगों में दूसरा है 'नियम'। यमों के पालन से बाह्य शुद्धि होती है, तो नियमों के पालन से आन्तरिक शुद्धि होती है। पातंजल योग सूत्र तथा वेदान्तसार में नियम का लक्षण इस प्रकार है –

''शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः।।''————————(8)

अर्थात् शौच (पवित्रता), संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यानि–ईश्वर शरणागति, ये पाँच नियम हैं।

''शौच–सन्तोष–तपः–स्वाध्याय–ईश्वर–प्रणिधानानि नियमाः।।''————(9)

अर्थात् शौच (देह, मन की स्वच्छता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर की उपासना ये पाँच नियम कहलाते हैं। ये नियम इस प्रकार है –

1. **शौच :–** शरीर, वस्त्र, मकान की पवित्रता, न्यायपूर्वक धन प्राप्त करना, शुद्ध एवं सात्विक भोजन प्राप्त करना, सबके साथ पवित्र बर्ताव करना, विचारों को शुद्ध रखना, मैत्री भावना को बढ़ाना, राग–द्वेष–ईर्ष्या–घृणा–क्रोध आदि मलों का नाश करना आन्तरिक पवित्रता है, इसे शौच कहा जाता है।

2. **संतोष :–** जिस अवस्था, परिस्थिति में रहना पड़े, उससे सन्तुष्ट रहना। कर्तव्य कर्म करते हुए जो कुछ प्राप्त हो जाये, उसी में निर्वाह करना। वासनाओं को अधिक न बढ़ाना, उन्हें सीमित रखना। किसी प्रकार की कामना अथवा तृष्णा न करना। दूसरों की सम्पदा देखकर ईर्ष्या न करना ही 'सन्तोष' है। इनसे वृत्तियाँ शान्त होती हैं।

3. **तप :–** 'तप' का अर्थ है – साधनाकाल में जो जो शारीरिक व मानसिक कष्ट प्राप्त हों, उन्हें सहर्ष ईश्वरेच्छा समझकर स्वीकार कर लेना तथा प्रतिक्रिया न करना। साधनाकाल में व्रत, उपवास, स्वधर्म पालन, स्वकर्तव्य पालन, नियम, संयम आदि जितने भी शास्त्रोक्त कर्तव्य कर्म हैं, उन्हें निष्ठा एवं ईमानदारी से करना तथा इनसे जो भी कष्ट हो, उसे सहन करना ही 'तप' है। ऐसे तप से अन्तःकरण शुद्ध होता है।

4. **स्वाध्याय :–** स्वाध्याय अर्थात् 'स्व' का अध्ययन। ध्यान की स्थिति में अपने स्वरूप का ध्यान करना। आत्मा, ओंकार, ईश्वर का ध्यान करना तथा उसी के मन्त्र का जाप करना। आत्मा एवं परमात्मा में अभेद सम्बन्ध बनाने की क्रिया ही 'स्वाध्याय' है। इनसे स्वयं के दोष दूर होकर चित्त वृत्तियों का निरोध होता है।

5. **ईश्वर–प्रणिधान या ईश्वर शरणागति :–** जिसमें साधक पूर्ण रूपेण अपने शरीर, मन, बुद्धि एवं अहंकार सहित ईश्वर को समर्पित कर देता है तथा अपना निजत्व समाप्त कर ईश्वर की मर्जी के अनुकूल कार्य करता है। अतः ईश्वर में लीन या तल्लीन हो जाना ही ईश्वर प्रणिधान है।

तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर–प्रणिधान ये तीनों 'क्रियायोग' है :–

''तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।''————————(10)

आसन

''स्थिरसुखमासनम्''————————————————(11)

अर्थात् स्थिर और सुख पूर्वक जिसमें बैठा जा सके, वह 'आसन' है।

''कर–चरणादि–संस्थान–विशेष–लक्षणानि पद्म–स्वस्तिक–आदीनि आसनानि।।''————(12)

अर्थात् हाँथ–पांव आदि अंगों को विशिष्ट प्रकार से रखना अर्थात् निश्चल, बिना हिले–डुले सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।

यदि अधिक समय तक शरीर को बिना हिलाए–डुलाए स्थिर अवस्था में, पत्थर की मूर्ति के समान स्थिर रखा जा सके तो उसके विचारों का प्रवाह रूक जाता है। समानतया तीन आसन श्रेष्ठ माने जाते हैं – **सुखासन, सिद्धासन, पद्मासन।** जिसको जो सुविधाजनक हो, उसी का वह प्रयोग करे। किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रीढ़ की हड्डी व गर्दन सीधी रहे ताकि ऊर्जा प्रवाह में बाधा न हो।

किसी भी आसन में यदि साधक लम्बे समय तक सुखपूर्वक, बिना शरीर को हिलाये–डुलाये बैठ सकता है, तो उसे आसन सिद्ध होना कहते हैं। इसकी सिद्धि के लिए आवश्यक है कि मन में जो निरन्तर विचारों का प्रवाह चलता रहता है, उसे रोकना। विचारों को शान्त करने के लिए अपना सारा ध्यान उस अनन्त शक्ति अर्थात् परमात्मा में लगा ले। किसी एक स्थान में ध्यान केन्द्रित हो जाने तथा निरन्तर उसमें लगे रहने से विचार बन्द हो जायेंगे, जिससे शरीर की चंचलता समाप्त होकर स्थिर हो जायेगा तथा लम्बे समय तक स्थिर रह सकेगा। यही आसन सिद्धि है।

जो योगी स्थिर अवस्था में अपने सम्पूर्ण विचारों को रोककर किसी एक बिन्दु अनन्त में अपने ध्यान को स्थिर कर लेता है, तो उसके शरीर में पड़ने वाला सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, हर्ष–विषाद आदि द्वन्दों का आघात समाप्त हो जाता है। किसी एक बिन्दु पर यदि चेतना केन्द्रित हो जाती है, तो शरीर पर मक्खी–मच्छर काटने का ध्यान भी नहीं रहता, न छोटे–मोटे आघात का ही उसे अनुभव होता है। इसकी उच्च स्थिति में यदि शरीर के किसी भाग की शल्य–क्रिया भी की जाये, तो उसे पता भी नहीं चलता। यही आसन सिद्धि का फल है।

प्राणायाम

"तस्मिन् सति–श्वास–प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः।।"————————(13)

अर्थात् आसन की सिद्धि होने पर श्वास–प्रश्वास की गति का रूक जाना प्राणायाम' है।

"रेचक–पूरक–कुम्भक–लक्षणाः प्राण–निग्रह–उपायाः प्राणायामाः।।————————(14)

अर्थात् रेचक–पूरक–कुम्भक के रूप में प्राणवायु के निग्रह (वश में लाने) के उपायों को 'प्राणायाम' कहते हैं।

सामान्तया श्वास–प्रश्वास की गति को रोक देना ही प्राणायाम माना जाता है। अतः स्थिर अवस्था में बैठकर श्वास–प्रश्वास की गति को नियंत्रित करने के लिए पूरक–कुम्भक–रेचक किया जाता है, उसे 'प्राणायाम' कहते हैं। किन्तु महर्षि पतंजलि कहते हैं कि आसन के सिद्ध होने पर शरीर ही निष्क्रिय नहीं होता बल्कि इसका प्रभाव मन, इन्द्रियों एवं श्वास–प्रश्वास पर भी पड़ता है। जब शारीरिक चेतना किसी ध्येय पदार्थ अनन्त आदि में पूर्णया केन्द्रित हो जाती है, तभी आसन सिद्धि होती है तथा इसके फलस्वरूप श्वास–प्रश्वास की गति अपने आप रूक जाती है। इसी को 'प्राणायम' कहते हैं।

चेष्टापूर्वक श्वास की गति को नियन्त्रित करने तथा पूरक–कुम्भक–रेचक करने, लम्बी गहरी श्वास लेने आादि क्रियाओं से रक्त शुद्धि होकर शरीर की शुद्धि होती ही है, मन का सम्बन्ध प्राणों के साथ होने से वह भी शान्त हो जाता है। प्राणायाम अपने आप में पूर्ण विज्ञान है। यदि कोई साधक अन्य किसी साधन को न करके केवल प्राणायाम का ही सहारा लेता है, तो उसे तत्वबोध हो जाता है, जो कैवल्य प्राप्ति में सहायक होता है।

अस्तु संक्षेप में, श्वास–प्रश्वास को रोकने की क्रिया का नाम प्राणायाम नहीं बल्कि वह स्वाभाविक रूप से अपने–आप रूक जाता है, तो उसी को 'प्राणायाम' कहते हैं। यह अभ्यास सिद्धि प्राणायाम है, जो तीन प्रकार का होता है – बाह्य वृत्ति, आभ्यान्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति।

प्रत्याहार

"स्वविषयसम्प्रयोगे चित्तस्यस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।"————————(15)

अर्थात् जब इन्द्रियों का शब्दादि स्व विषयों से सम्बन्ध नहीं रहता, तब उनका चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना 'प्रत्याहार' है।

"इन्द्रियाणां स्व–स्व–विषयेभ्यः प्रत्याहरणं प्रत्याहारः।।"————————(16)

अर्थात् इन्द्रियों को अपने–अपने विषयों से वापस खींचने को 'प्रत्याहार' कहते हैं।

अतः चित्त की वृत्तियों का क्रियान्वयन शरीर तथा इन्द्रियों के माध्यम से होता है। इस क्रियान्वित का कारण मन द्वारा इन विषयों का चिन्तन किया जाता है। प्राणायाम की सिद्धि होने पर मन स्थिर हो जाता है, जिससे वह विषयों का चिन्तन छोड़कर अपने इष्ट के ध्यान में लग जाता है। चिन्तन के छूटने से इन्द्रियों की बाह्य वृत्तियाँ अपने–आप छूट जाती हैं तथा ये चित्त में विलीन हो जाती हैं। जिस प्रकार कछुआ भय उपस्थित होने पर अपने अंग शरीर के भीतर छिपा लेता है, उसी प्रकार ये वृत्तियाँ सिकुड़कर मन में विलीन हो जाती हैं। ये नष्ट तो नहीं होतीं किन्तु इनका बाह्य स्वरूप लुप्त हो जाता है। इनका विषयों की ओर भागना बन्द हो जाता है, यही प्रत्याहार है।

'प्रत्याहार' का अर्थ है – 'नान स्टैचमेण्ट'। अर्थात् सांसारिक विषयों के प्रति मन का जो आकर्षण है, जिसमें वह सुख का अनुभव करता है, उसके प्रति आसक्ति का त्याग हो जाता है। वह अब इनके मोह को छोड़कर आत्मज्ञान की ओर आकर्षित होता है। मन की इसी स्थिति को 'प्रत्याहार' कहा जाता है। यह साधना का विषय नहीं, बल्कि मानसिक परिवर्तन से अपने–आप हो जाता है। इस प्रत्याहार से इन्द्रियाँ पूर्ण वशवर्त्तिनी होती है।

धारणा

"देशवन्धश्चित्तस्यधारणा।।"————————————(17)

अर्थात् चित्त का किसी एक देश या स्थान (नासिकाग्रभाग, नाभि, हृदयकमल, भृकुटि, सूर्य, चन्द्र, ध्रुवादि) में ठहरना 'धारणा' है।

"अद्वितीय–वस्तुनि अन्तः–इन्द्रिय–धारणं धारणा।।"————————(18)

अर्थात् अन्तः इन्द्रिय अर्थात् मन को अद्वय ब्रह्म वस्तु में लगाना 'धारणा' है।

जब चित्त का समस्त भटकाव समाप्त हो जाता है, तो वह पालतू पशु की भांति साधक के पूर्ण नियंत्रण में आ जाता है। इसके बाद साधक उसका पूर्ण उपभोग मुक्ति प्राप्त के लिए करता है। चित्त शक्ति वही है, जिसका पहले संसार की उपलब्धियों तथा भोगों में उपभोग हो रहा था। अब उसका मुक्ति (कैवल्य) के लिए उपभोग करना है। इस चित्त को अब किसी भी एक स्थान पर अपनी इच्छानुसार केन्द्रित किया जा सकता है। वह स्थान नाभि, कण्ठ, हृदय, भृकुटि, नासिकाग्रभाग आदि शरीर के भीतर के स्थान हो सकते हैं अथवा सूर्य, चन्द्र, ध्रुवतारा आदि बाह्य स्थान भी हो सकते हैं। इन भिन्न–भिन्न स्थानों में चित्त के ठहराने को ही 'धारणा' कहते हैं। धारणा से मन की शुद्धि होती है तथा उसका भटकाव मिट जाता है।

ध्यान

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।।"————————————(19)

अर्थात् जहाँ चित्त को लगाया जाये, उसी में वृत्ति का एक तार चलना 'ध्यान' है।

"तत्र अद्वितीय–वस्तुनि विच्छिद्य–विच्छिद्य अन्तः–इन्द्रिय–वृत्ति–प्रवाहो ध्यानम्।"————(20)

अर्थात् मन की वृत्तियों का विछिन्न भाव से रूक–रूककर अद्वय ब्रह्म वस्तु में प्रवाहित होना 'ध्यान' कहलाता है।

धारणा में चित्त को किसी एक स्थान में स्थिर किया जाता है। जब वह उसमें स्थिर रहकर निरन्तर उसी में एक–तार चलता रहता है तो उसी को 'ध्यान' कहते हैं। 'धारणा' (कन्सन्ट्रेशन) और 'ध्यान' (मेडीटेशन) में यही अन्तर है। ध्यान में विचारों का प्रवाह बन्द हो जाता है तथा वृत्ति का प्रवाह केवल ध्येय मात्र की तरह ही हो जाता है, अन्य कोई वृत्ति नहीं उठती। धारण में जहाँ मन की शुद्धि होती है, वहीं ध्यान से अस्मिता (मैं, पन) का सुधार होता है। ध्यान के स्थिर होने पर साधक का अहंकर गिर जाता है तथा केवल 'हूँ' ही शेष रह जाता है, जिसका लय समाधि में होता है।

समाधि

"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।।"————————————(21)

अर्थात् चित्त जिसका ध्यान कर रहा हो, उसका स्वरूप शून्य होकर जब केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है, वह समाधि कहलाती है।

धारणा और ध्यान में कोई स्थान या वस्तु होती है, जिस पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है तथा चित्त का प्रवाह उसी ओर निरन्तर चलता रहता है, किन्तु इसमें अधिक समय तक स्थिर रहने पर जिसका ध्यान किया जा रहा है, उसका स्वरूप शून्य हो जाता है, उसका आभास ही मिट जाता है तथा केवल ध्येयमात्र की प्रतीति होती है, इस अवस्था को 'समाधि' कहते हैं। यह समाधि क्रिया नहीं बल्कि उपलब्धि है। यह साधना नहीं बल्कि घटना है, जो ध्यान के स्थिर होने पर अपने–आप घटती है। इस स्थिति में चित्त के निज स्वरूप का अभाव हो जाता है तथा ध्येय के आकार में परिणत हो जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि तीनों में कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। ये तीनों अक्रिया में केवल दृष्टा अथवा साक्षी भाव रखने से ये घटनायें घट जाती हैं। अपने को पूर्णरूपेण सहज भाव से निष्प्रयास छोड़ देना ही पर्याप्त है। धारणा, ध्यान, समाधि तीनों एक ही वस्तु में स्थित हो तो वह 'संयम' है।

वेदान्त–सार में समाधि दो प्रकार की बताई गई है :– सविकल्पिक तथा निर्विकल्पक –

"समाधिः द्विविधः सविकल्पको निर्विकल्पकः च इति।।"————————————(22)

"तत्र सविकल्पको नाम ज्ञातृ–ज्ञान–आदि–विकल्प–लय–अनपेक्षया–
अद्वितीय–वस्तुनि तद्–आकार–आकारितायाः चित्तवृत्तेः अवस्थानम्।।"————(23)

अर्थात् सविकल्पक समाधि वह है, जिसमें ज्ञाता–ज्ञान आदि (त्रिपुटी) विकल्पों के लय हुए बिना ही चित्तवृत्ति अद्वय ब्रह्म वस्तु में तदाकार–आकारित होकर अवस्थान करती है। इसे सम्प्रति ज्ञान समाधि भी कहते हैं।

"निर्विकल्पकः तु ज्ञातृ–ज्ञान–आदि–विकल्प–लय–अपेक्षया अद्वितीय–वस्तुनि– तद्–आकार–आकारितायाः चित्तवृत्तेः अतितराम् एकीभावेनअवस्थानम्।।"————(24)

अर्थात् निर्विकल्पक समाधि वह अवस्था है, जिसमें ज्ञाता–ज्ञान आदि के विकल्प (भेद) का लय (नाश) होकर चित्तवृत्ति अद्वैत ब्रह्म वस्तु में तदाकर आकारित होकर अत्यन्त एकत्व भाव से स्थित रहती है।

योग के जिन आठ अंगों की बात कही गई है, उनमें पहले पाँच यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार वहिरंग साधन कहलाते हैं। इन पाँचों वहिरंग साधनों के सिद्ध हो जाने पर साधक का क्रिया योग समाप्त हो जाता है। इसके बाद उसे क्रिया को नहीं करना पड़ता तथा वह अक्रिया के मार्ग में प्रवेश करता है। अन्तिम उपलब्धि अक्रिया से ही होती है। इस अक्रिया में धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन मुख्य साधन हैं। इन तीनों में थोड़ा ही अन्तर है। वहिरंग साधनों से चित्त की वृत्तियों का समस्त भटकाव समाप्त हो जाता है तथा मन पूर्णतया स्थिर एवं नियंत्रण में आ जाता है। इसके बाद मन को चित्त में तथा चित्त को अपने कारण में विलीन करने का कार्य इन अन्तरंग साधनों द्वारा पूरा करना होता है। तभी अन्तिम उपलब्धि 'कैवल्य' की प्राप्ति होती है।

निष्कर्ष

वर्तमान समाज के तीन वर्गीकरण किये जा सकते हैं –

1. अमीर वर्ग अर्थात् उच्च आय वर्ग।
2. मध्यम वर्ग अर्थात् मध्यम आय वर्ग।
3. निम्न वर्ग अर्थात् निम्न आय वर्ग।

मध्यम वर्ग तो मध्यम तरीके से खान–पान, रहन–सहन, घर–परिवार का भरण पोषण व जीवन का निर्वाह कर लेता है किन्तु निम्न आय वर्ग जिसे गरीब कहते हैं, उसकी विकट समस्या है। दिन भर इधर–उधर भटकता है, मजदूरी करता है, फिर भी पेट भर भोजन नसीब नहीं होता है। ऐसी स्थिति में वह अपना और अपने परिवार का भरण–पोषण कैसे कर सकता है और ऊपर से यदि परिवार के किसी भी सदस्य के बीमार हो जाने पर उसका इलाज कैसे करा सकता है। अन्ततः इलाज के अभाव में उसकी मृत्यु हो जाती है। दूसरी तरफ अमीर वर्ग, जिसकी उच्च आय है, वह इतना मंहगा खाना खाता है जिसको पचाना मुश्किल है। खाये हुए को पचाने के लिए मेडिसिन का सहारा लेना पड़ता है किन्तु कुछ ऐसे रोग लग जाते हैं जिसे राजरोग कहते है, जो लाइलाज होते हैं। अन्तोगत्वा उनकी भी मृत्यु हो जाती है। इतनी विषम परिस्थितियाँ हैं कि एक तरफ गरीब भूख के मारे मर रहा है, तो दूसरी तरफ अमीर मंहगा खाना खाने की वजह से मर रहा है क्योंकि उसे पचा नहीं पा रहा है।

इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र की रचना की होगी, जिससे गरीब भी प्राणायाम एवं योगासन करके स्वस्थ एवं बीमारी से मुक्त रहेगा तथा अमीर भी योगासन और प्राणायाम करके खाये हुए को आसानी से पचा लेगा तो वह स्वस्थ और बीमारी से मुक्त रहेगा।

मनुष्य के लिए योगासन और प्राणायाम दोनों जरूरी है क्योंकि प्राणायाम आन्तरिक संरचना और तंत्रिकातन्त्र को सुद्रण बनाता है तथा योगासन, अभ्यास से बाह्य संरचना अर्थात् मांसपेशियाँ व हड्डियाँ मजबूत होती हैं। जिससे मनुष्य स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल व ताकतवर के साथ–साथ उसका वैचारिक दृष्टिकोण बड़ा सुदृढ़ होता है।

अतः योग मनुष्य की चित्तवृत्तियों का निरोध करके उसे स्वस्थ सामाजिक प्राणी बनाता है जिससे काम–क्रोध, ईर्ष्या–द्वेष, लोभ–मोह आदि विकारों को त्यागकर क्लेशों तथा तनाव से मुक्त करता है। योगासन एवं प्राणायाम से जीवात्मा का विराट चेतन से सम्पर्क जुड़ जाता है और दिव्य आदान–प्रादान का मार्ग खुल जाता है। यही मेरे शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. पातंजल योग सूत्र – 1/2
2. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 68
3. पातंजल योग सूत्र – 1/6
4. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 200
5. पातंजल योग सूत्र – 2/29
6. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 201
7. पातंजल योग सूत्र – 2/30
8. पातंजल योग सूत्र – 2/32
9. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 202
10. पातंजल योग सूत्र – 2/1
11. पातंजल योग सूत्र – 2/46
12. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 203
13. पातंजल योग सूत्र – 2/49
14. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 204
15. पातंजल योग सूत्र – 2/54
16. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 205
17. पातंजल योग सूत्र – 3/1
18. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 206
19. पातंजल योग सूत्र – 3/2
20. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 207
21. पातंजल योग सूत्र – 3/3
22. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 193
23. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 194
24. वेदान्त सार सूत्र सं0 – 197